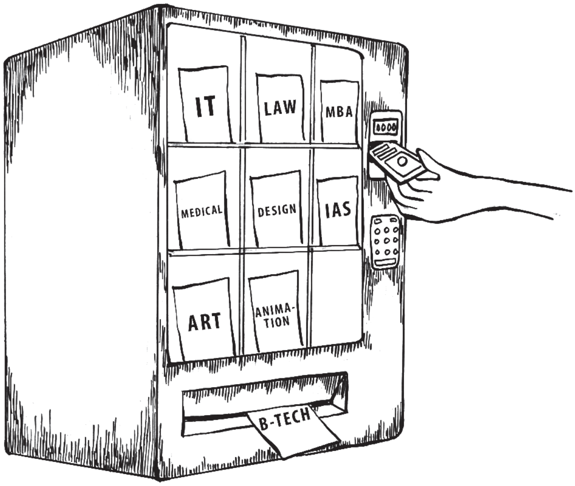
3

शिक्षा, बाज़ार का विकास और सामाजिक टकराव

कई तरह की समाजशास्त्रीय प्रक्रियाओं का भारत की शिक्षा पर गहरा असर हो रहा है। इस लेख में हम बाज़ारों के विकास और खरीद-फरोख्त के ज़रिए माल एवं सेवाओं के आदान-प्रदान के बारे में बात करेंगे। यह परिवर्तन आर्थिक ही नहीं, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भी हैं। हम ऐसे कई रिश्तों को भी बदलते हुए देख रहे हैं जो पहले गैर-मौद्रिक थे लेकिन अब जिनमें पैसों का लेन-देन बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। इन बदलावों का शिक्षा के रोज़मर्रा के अनुभवों पर भारी असर दिखता है और उसके उद्देश्यों और पाठ्यचर्या पर भी। इन बदलावों और उनसे उभरते कुछ सवालों पर ध्यान देना ज़रूरी है। शिक्षा का निजीकरण कई तरह की बहसों और तीखे विवादों का मुद्दा रहा है। समाजशास्त्री कहते हैं कि यह शिक्षा व्यवस्था में सिर्फ सतही बदलाव नहीं है, बल्कि भारतीय समाज में होने वाले एक बहुत बड़े बदलाव का हिस्सा है। हम आगे बढ़ने के लिए जो भी दिशा चुनेंगे उसके नतीजे दूरगामी होंगे।

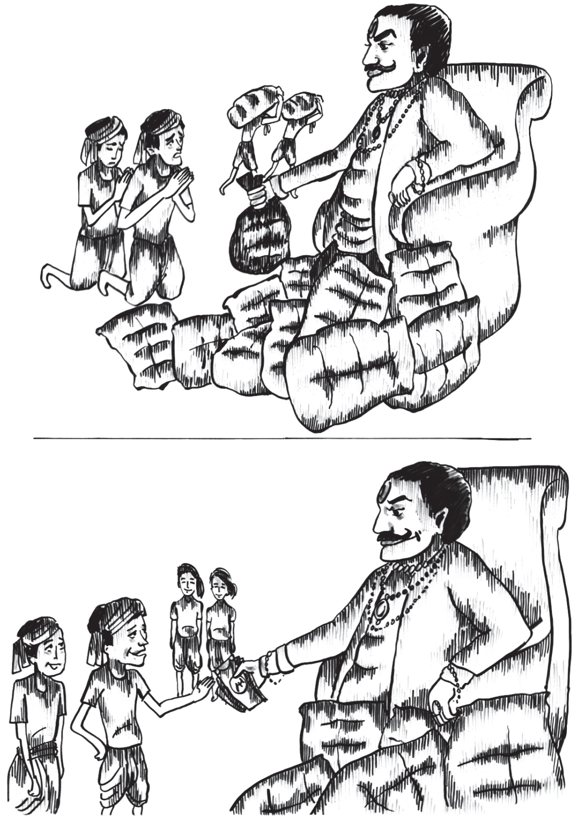
आदान-प्रदान और मानवीय रिश्ते

इन सब में बुनियादी बात यह है कि हम अपनी आदान-प्रदान की गतिविधियों में किस तरह के रिश्ते अभिव्यक्त कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, कुछ समय पहले तक भारत के अधिकांश खेतिहर मज़दूर और कारीगर जब किसानों के लिए काम करते थे, तो उन्हें रुपयों की



बजाय एक निश्चित मात्रा में अनाज दिया जाता था। जब वे किसान या ज़मींदार के यहाँ जाते थे तो उनके साथ परिवार के सदस्यों जैसा व्यवहार किया जाता था, जैसे कुछ खाने के लिए दे देना वगैरह, बेशक यह जताते हुए कि वे छोटे हैं और उनकी हैसियत किसान या ज़मींदार के बराबर नहीं हैं। मज़दूरों का शोषण और उनके साथ हिंसा आम बात थी, यहाँ तक कि उनका यौन उत्पीड़न भी होता था। लेकिन इन सबके साथ-साथ इस तरह की मान्यताएँ भी थीं कि मज़दूर वफादार सेवक हैं और उनका ध्यान रखना मालिक का नैतिक और धार्मिक कर्तव्य है। इस तरह की व्यवस्था में शिक्षा आम तौर पर थोड़े बड़े किसानों और व्यापारियों को ही मिलती थी और वह काम करने वालों के प्रति इसी तरह का व्यवहार करना सिखाती थी। इस तरह के सम्बन्धों को एक खास तरह का उत्पादन सम्बन्ध (Relation of production) कहा जाता है क्योंकि इन सम्बन्धों से एक खास तरह की उत्पादन व्यवस्था बनती है।

ऐसी व्यवस्था में काम व्यक्तिगत सम्बन्धों के ताने-बाने में किया जाता था, यानी काम अपने परिवार के लिए किया जाता था और अपने मालिक के लिए, जिसके साथ अधीनता का एक पारम्परिक रिश्ता था। यह रिश्ता वैसे ही बना रहता, चाहे मालिक गाली-गलौच और दुर्व्यवहार ही क्यों न करे। इस तरह के उत्पादन सम्बन्ध, जो सांस्कृतिक प्रतीकों के ताने-बाने में गुँथे हुए थे, अब बदलकर एक ऐसी शक्ल ले चुके हैं जिसमें मुद्रा के रूप में दिया जाने वाला वेतन या मज़दूरी प्राथमिक



श्रम के सामन्ती व पूँजीवादी स्वरूप

तत्व होता है। पैसों का इस्तेमाल तो सदियों से होता आ रहा है, मगर शायद पिछली दो शताब्दियों से वह आदान-प्रदान का मुख्य साधन बन गया है। मानवीय सम्बन्ध अभी भी महत्वपूर्ण हैं, मगर बहुत-सी बातों में उनकी जगह मज़दूरों को दी जाने वाले मज़दूरी ने ले ली है।

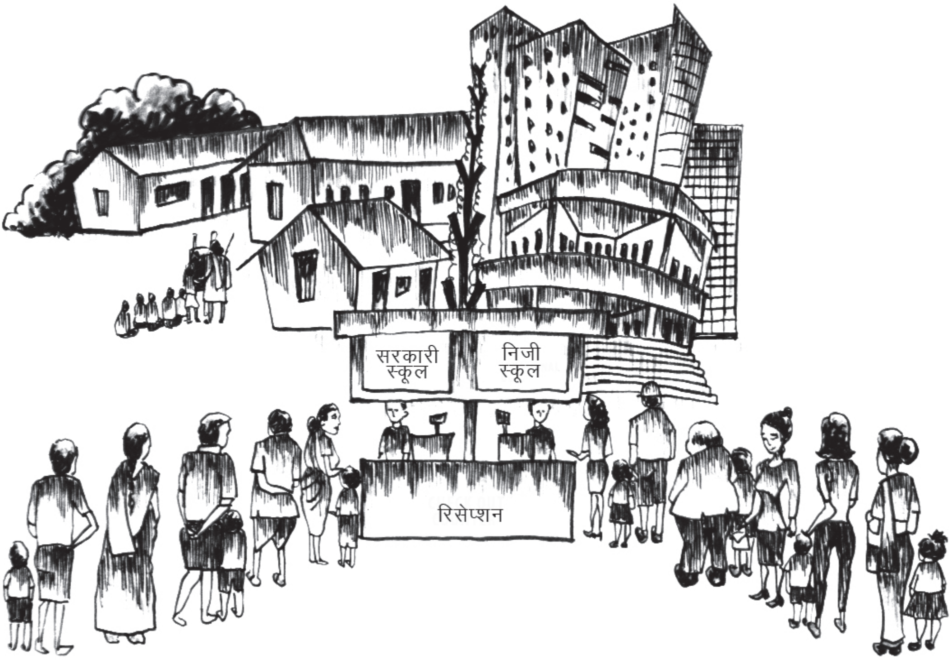
माल और सेवाओं के निर्माण के, उनके आदान-प्रदान के और उनकी खपत के तौर-तरीकों में ज़बरदस्त परिवर्तन आया है। मानव-वैज्ञानिक और समाजशास्त्री इसे समझने के लिए अक्सर कार्ल पोलान्यी (2001/1944) की भाषा का इस्तेमाल करते हैं। उनके अनुसार विभिन्न समाजों में माल और सेवाओं, जिनमें से शिक्षा भी एक है, के आदान-प्रदान के तीन मुख्य तरीके होते हैं – पारस्परिकता (Mutualism), पुनर्वितरण (Redistribution) और जिंसीकरण (Commodification)। इनके भी कई रूप-रंग हो सकते हैं मगर अभी के लिए इनके बारे में सरल

तरीके से बात करेंगे। हम आगे देखेंगे कि शिक्षा का इन में से हर एक में किस तरह का अलग रूप बनता हैं। शिक्षा को ले कर कई सवाल इस बात पर निर्भर करते हैं कि हम उसे किस तरह के आदान-प्रदान के रूप में देखना चाहते हैं।

जब वस्तुओं और सेवाओं को जिंस या माल या पण्य (Commodity) के रूप में देखा जाता है तो उनका मूल्य पैसों में नापा जाता है और उन्हें बाज़ार के ज़रिए बेचा और खरीदा जा सकता है। बाज़ार वह जगह होती है जहाँ वस्तुओं को आदान-प्रदान करने के लिए ही रखा जाता है और जहाँ उनको बेचने और खरीदने वाले भाव-ताव करने के लिए इकट्ठे होते हैं। आजकल बाज़ारों में वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य को नापने के लिए मुख्यतः मुद्रा का ही इस्तेमाल किया जाता है, जो वस्तु विनिमय प्रणाली जैसी व्यवस्थाओं में नहीं होता है।

बाज़ार में किसी वस्तु या सेवा के मूल्य निर्धारण पर उस वस्तु या सेवा की माँग व उसकी आपूर्ति का असर पड़ता है। इसी लिए बाज़ार आधारित लेन-देन में पढ़ाने जैसे काम के मूल्य के निर्धारण का आधार यह होगा कि शिक्षकों की माँग और आपूर्ति की क्या स्थिति है। इसमें अलग-अलग तरह की पढ़ाई-लिखाई के मूल्य को नाप कर उसको निश्चित आँकड़ों में दिखाने और फिर उसके मूल्य को रुपयों में निर्धारित करने पर ज़ोर दिया जाएगा। उदाहरण के लिए, जिन शिक्षकों की कोचिंग सेंटरों में बहुत माँग रहती है वे एक छात्र के लिए 5000 या उससे अधिक रुपए भी ले सकते हैं। उनका रेट इससे तय नहीं होता कि उनके द्वारा दी गई शिक्षा कितनी अच्छी है बल्कि इससे कि उनकी माँग कितनी है और छात्र कितने रुपए देने की क्षमता और तैयारी रखते हैं। इसी तरह किसी 'इन्टरनेशनल स्कूल' के शिक्षक महीने के एक लाख तक कमा सकते हैं। यह इसलिए क्योंकि उस तरह के पाठ्यक्रम की जानकारी रखने वाले शिक्षक कम मिलते हैं और ऐसे स्कूलों के बच्चों के माँ-बाप के पास देने के लिए अधिक पैसे भी होते हैं।

जहाँ आदान-प्रदान पारस्परिकता पर आधारित होता है वहाँ चीज़ों का मूल्य मुख्य रूप से पैसों में नहीं देखा जाता। न ही वहाँ खुले और

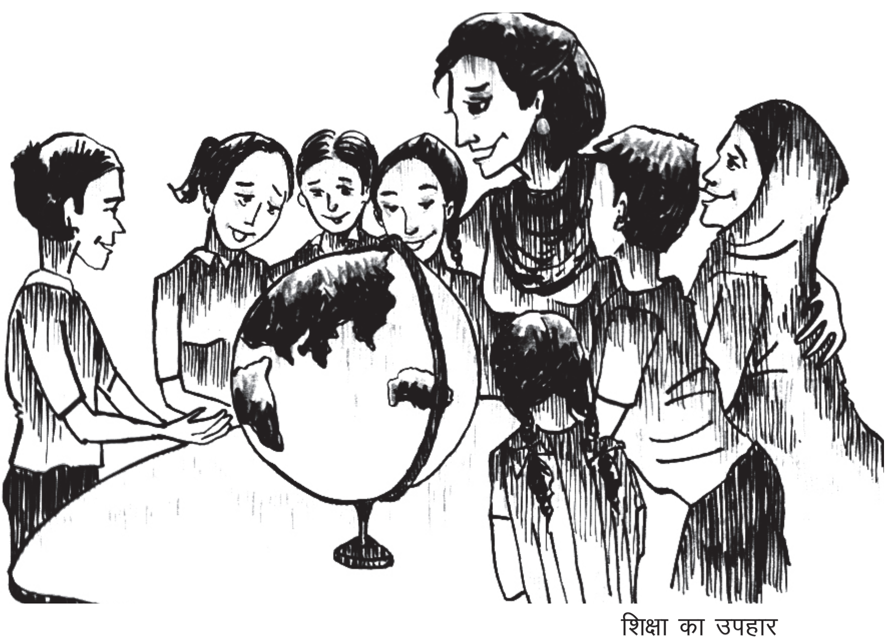


शिक्षा में जिंसीकृत लेन-देन

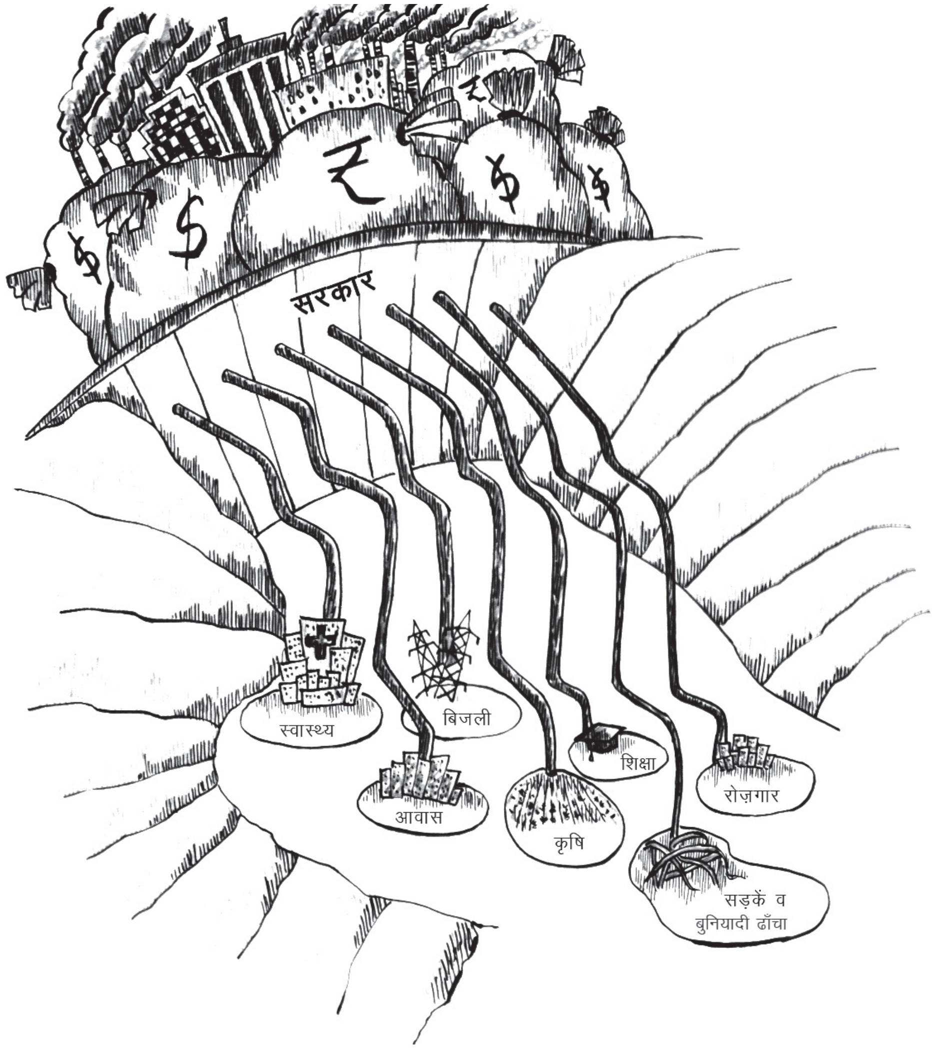
प्रत्यक्ष रूप से भाव-ताव किया जाता है। जब एक अच्छी बहन या भाई या अच्छा व्यक्ति होने के नाते किसी को कोई भेंट दी जाती है तो जो आदान-प्रदान हो रहा है वह मुख्य रूप से एक सम्बन्ध या रिश्ते का प्रतीक होता है। जब मैं अपनी चचेरी बहन को साड़ी देता हूँ तो वह कुछ रिश्तों को परिपक्व करने के लिए होता है। हाँ, कभी-कभी ऐसे भेंट भी दिए जाते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य कुछ रिश्तेदारों को चिढ़ाना ही होता है। भेंट देते हुए कई बार वापस कुछ भेंट पाने की उम्मीद भी हो सकती है। और वस्तुओं के तुलनात्मक मूल्यों का भी महत्व होता है, लेकिन वह इस तरह के लेन-देन का असल मकसद नहीं होता हैं। यहाँ पर लेन-देन का सांस्कृतिक और पारम्परिक महत्व है। यह ज़रूरी नहीं कि यह सिर्फ रिश्तों के प्रतीक ही हों, इनसे हमारी ज़रूरत की काफी चीज़ें भी मिल सकती हैं। मगर आदान-प्रदान की चीज़ों का सटीक नाप और सटीक भुगतान इस तरह के आदान-प्रदान की संस्कृति से बाहर की बात है। लोग इसे बहुत बुरा मानेंगे अगर हम किसी मित्र को कहें कि अगर आप मेरे 10 प्रतिशत ज़्यादा अच्छे दोस्त बन जाएँगे तो मैं आपको 10 प्रतिशत ज़्यादा अच्छा उपहार दूँगा।

हमारे जीवन में अलग-अलग तरह के लेन-देन की अलग जगह होती है। शिक्षा को अक्सर एक ऐसी प्रक्रिया माना जाता है जो पारस्परिकता और रिश्तों पर आधारित होती है न कि बाज़ार के नाप-तोल पर। भारत के कई हिस्सों में कुछ समय पहले तक ज़्यादातर स्कूलों में ऐसे शिक्षक थे जिन्हें बच्चों को पढ़ाने के लिए किसी रईस द्वारा थोड़े से पैसे मिलते थे। मध्यकालीन भारत में यह आम था। उस राशि को मानदेय के रूप में देखा जाता था, वेतन के रूप में नहीं। बच्चे जो कुछ घर से लाते थे वह शिक्षक के लिए भेंट होती थी, उसके काम की कीमत नहीं। हो सकता है शिक्षक की रोज़ी-रोटी उन्हीं चीज़ों से चलती हो, मगर वह अलग बात थी। यह माना जाता था कि शिक्षक अपना काम सांस्कृतिक कारणों से करते हैं, उस काम से मिलने वाले सम्मान और एक सांस्कृतिक धरोहर को ज़िन्दा रखने के आनन्द के लिए करते हैं। यह दीगर बात है कि ऐसे भी कई शिक्षक होते होंगे जिनका गुज़ारा इसके बिना नहीं हो सकता था।

लोगों तक वस्तुओं और सेवाओं को पहुँचाने का एक दूसरा तरीका है पुनर्वितरण का। यह पैसों के लेन-देन पर आधारित न होकर, राजनैतिक



शिक्षा का उपहार



पुनर्वितरण के रूप में शिक्षा

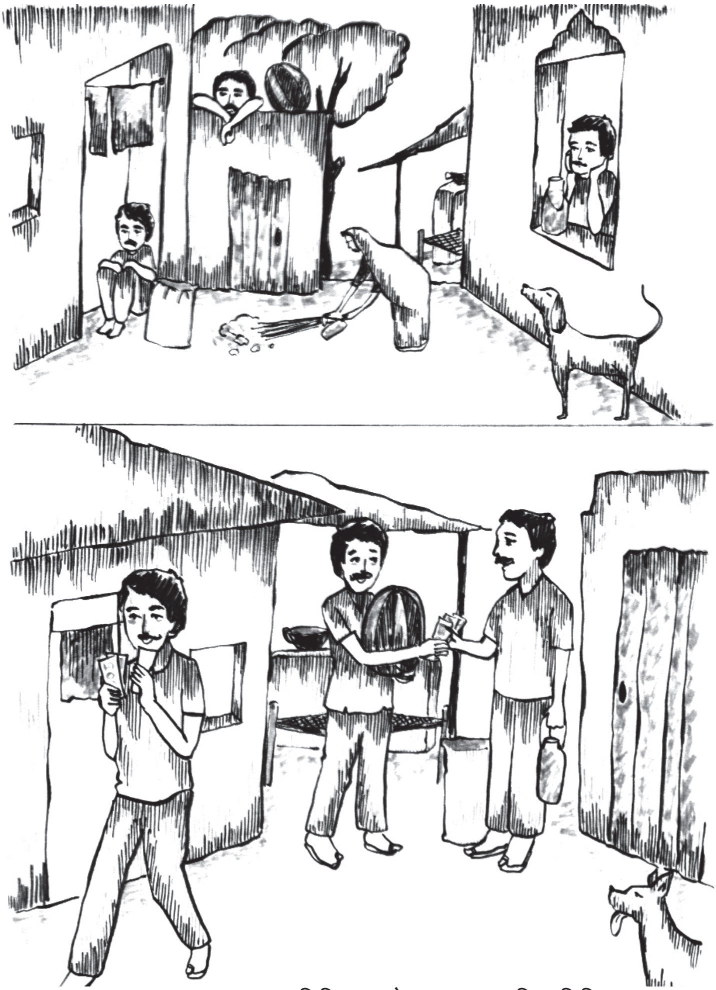
और सांस्कृतिक लेन-देन पर आधारित होता है। एक उदाहरण ऐसे ज़मींदार का हो सकता है जो अपने असामियों से आए अनाज का एक बड़ा हिस्सा पाठशालाओं को दे देता हो। गुरुजी को दिया जाने वाला यह अनाज शिक्षा के रूप में बहुत सारे परिवारों को वापस मिलता था। पुनर्वितरण से ज़मींदार को सम्मान और इज्ज़त मिलती थी और शायद राजनैतिक ताकत भी। उसका एक असर यह भी होता होगा कि शिक्षक ज़मींदार की कारगुज़ारियों पर सवाल नहीं उठाता होगा।

बाज़ारीकरण से सामाजिक बन्धनों का घुलना

आज के समय में पारस्परिकता, पुनर्वितरण और जिंसीकरण तीनों देखने को मिलते हैं। वह स्थिति जिसमें आदान-प्रदान विशिष्ट सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के अभिन्न हिस्से होते हैं उसे सन्निहितता (Embeddedness) कहते हैं क्योंकि इस तरह के आदान-प्रदान समाज में लोगों को एक-दूसरे से बाँध कर और उनके परिवेश में जोड़कर रखते हैं। मगर आज ज़्यादातर मानव वैज्ञानिक और समाजशास्त्री यह कहेंगे कि धीरे-धीरे बाज़ार और जिंसीकरण का प्रभाव बढ़ता दिख रहा है। कार्ल पोलान्यी ने इसे समाज के अंशों के घुलाव (Disembedding) का नाम दिया था। घुलने से आशय यह है कि पैसों और बाज़ार के ज़रिए लोगों और साधनों को उनके परिवेश से निकाल कर बड़ी आसानी से यहाँ से वहाँ किया जा सकता है।

मुद्रा के इस्तेमाल से आदान-प्रदान में कई फायदे होते हैं। उदाहरण के लिए, कल्पना कीजिए कि मेरे पास एक बढ़िया तरबूज़ है जिसके बदले में मुझे दो लीटर दूध चाहिए। दूसरी तरफ, मेरे दोस्त ज़फर को तरबूज़ चाहिए मगर उसके पास बदले में देने के लिए दूध न होकर गेहूँ है। मगर मुझे गेहूँ नहीं चाहिए, मुझे तो दूध ही चाहिए। पास में रहने वाले सुरेश के पास दूध है मगर उसे मेरे तरबूज़ में कोई रुचि नहीं। उसे गेहूँ चाहिए। हम तीनों फँसे पड़े हैं। पैसों के धीरे-धीरे बढ़ते प्रयोग से हमारी समस्याओं का हल मिल जाता है और हमारे उत्पाद अपनी गोद से आज़ाद हो जाते हैं। हम अपने गेहूँ, तरबूज़ और दूध को एक साझे माध्यम यानी रुपए में बदलकर जो मर्ज़ी ले सकते हैं। लेन-देन ज़्यादा आसानी से होने लगता है। सामाजिक घुलाव के चलते तमाम सम्बन्ध और लेन-देन बन्धनों और रूढ़ियों से आज़ाद हो जाते हैं। इससे कई फायदे होते हैं और शायद कुछ नुकसान भी।

जिन खेतिहर मज़दूरों का ज़िक्र शुरूआत में किया गया था, उनकी तो ज़िन्दगी ही बदल गई है। अब वे ज़्यादातर काम के बदले पैसे लेते हैं, फसल का हिस्सा नहीं। कई जगहों पर मज़दूरों के बाज़ार पनप गए हैं और मज़दूर अब अलग-अलग काम देने वालों से बातचीत व



वस्तु-विनिमय और मुद्रा-आधारित विनिमय

भाव-ताव कर सकते हैं। अब उनके पास रोज़गार के विकल्प मौजूद हैं और मालिक व मज़दूर के बीच जो पारम्परिक सम्बन्ध थे वे अब कमज़ोर हो रहे हैं। वह सम्बन्ध अब मुख्य रूप से महज़ वेतन देने के अनुबन्ध तक सीमित हो गया है और उससे बहुत आगे तक नहीं जाता है। जब यह मज़दूर दूसरी जगहों पर रोज़गार ढूँढता है तो उसके शिक्षित होने से बहुत फर्क पड़ जाता है। शिक्षा उन्हें ऐसे सांस्कृतिक मूल्य और तकनीकी कौशल देती है जिनकी ज़रूरत कुछ लोगों को होती है। शिक्षा उन्हें नए रोज़गार के स्रोत ढूँढने में मदद करती है और साथ ही, काम में नए रिश्ते और सम्बन्ध बनाने में भी।

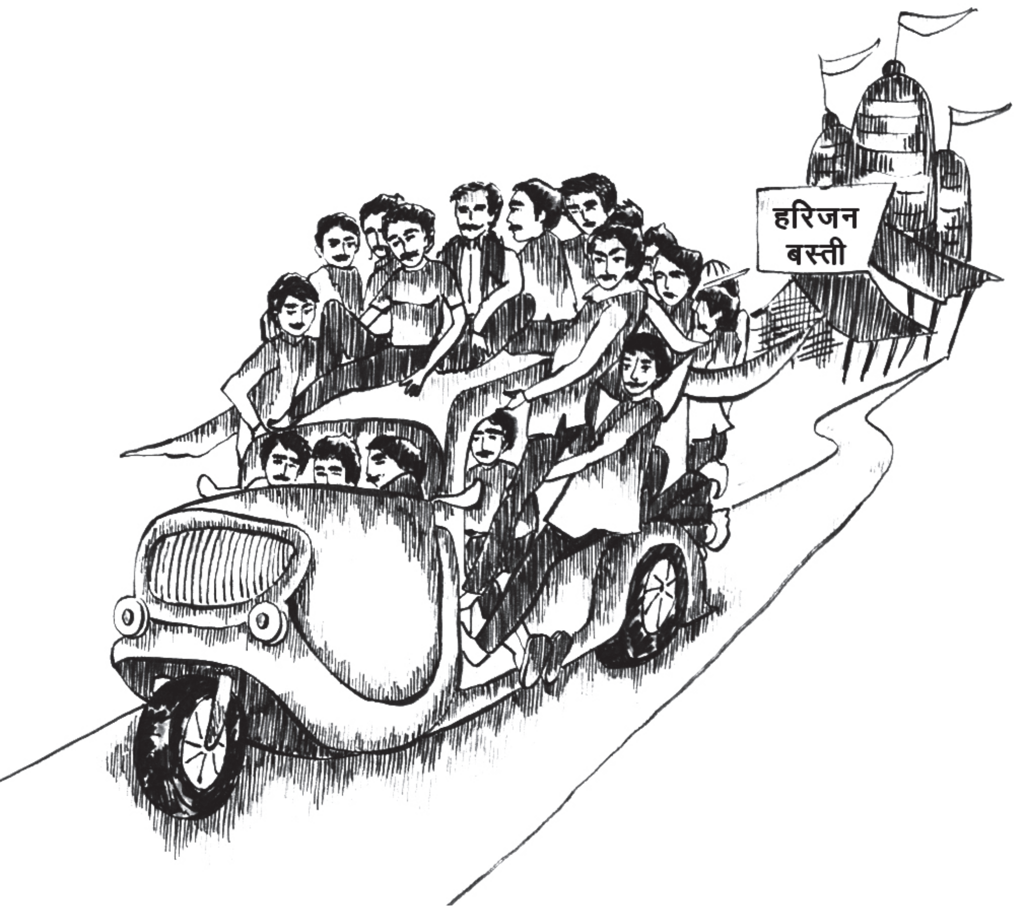
खेतिहर मज़दूर अक्सर अनुसूचित जातियों और जनजातियों से होते हैं। मज़दूरी के बाज़ार के विकास से उनके लिए गाँव से शहर की ओर पलायन करना आसान हो गया है और वे ऐसा करना पसन्द भी करते हैं। इससे उन्हें अपनी पुरानी स्थिति से छुटकारा मिलता है जहाँ उन्हें किसानों के सामने छोटा होकर जीना और काम करना पड़ता था। जैसे कई बार सुनने को मिलता भी है कि लोग गाँव में सर झुकाकर चलने की बजाय शहर में रिक्शा खींचकर गुज़ारा करना पसन्द करते हैं।

ग्राहक में तब्दील होना

मैं दस साल पहले मध्य प्रदेश के एक गाँव में कुछ बड़े लड़कों और नौजवानों से बातें कर रहा था। वे अनुसूचित जाति के थे और हम उनके घरों के पास खड़े थे जो गाँव के बाहरी इलाके में थे। चूँकि हम एक-दूसरे को दो-तीन साल से जानते थे, वे मुझसे घुलमिल गए थे और इसलिए हम वहाँ के सवर्ण लोग जिस शर्मनाक तरीके से उनसे व्यवहार करते थे उसके बारे में बातचीत कर पा रहे थे। उन्होंने मुझे रौंगटे खड़े कर देने वाले किस्से सुनाए कि कैसे जब वे अपने सहपाठियों के घर जाते थे तो उन्हें अन्दर नहीं बुलाया जाता था और चाय या पानी के लिए भी नहीं पूछा जाता था और अगर चाय दी भी जाती तो टूटे हुए प्याले में। उनकी कहानियों से परेशान मेरी नज़र गाँव से गुज़रने वाली सड़क पर गई। वहाँ हमारे सामने एक टैक्सी रुकी। वहाँ टैक्सी का मतलब था एक जीप जो गाँव-गाँव रुककर सवारियाँ लेती थी। इसमें अक्सर लोग एक-दूसरे के ऊपर ठूंस-ठूंसकर बैठे होते थे, सात लोगों की जगह में 12 या 15 तक। हमारे सामने वाली टैक्सी ने दो और सवारियों को जैसे-तैसे अन्दर घुसाया और चल दी। मैंने उन नौजवानों से पूछा, 'इन टैक्सियों में दिक्कत नहीं होती? लोग इनमें कैसे एक-दूसरे से चिपक कर बैठ जाते हैं?'।

उन्होंने मुस्कराते हुए बताया कि कुछ साल पहले जब टैक्सियाँ शुरू ही हुई थीं तो यहाँ हरिजन महल्ले में नहीं रुकती थीं। वहाँ गाँव के बीच मन्दिर के सामने ही रुकती थीं। मगर फिर टैक्सियों की संख्या बढ़ गई और उन्हें सीटों को भरने में दिक्कत आने लगी। तब उन्होंने

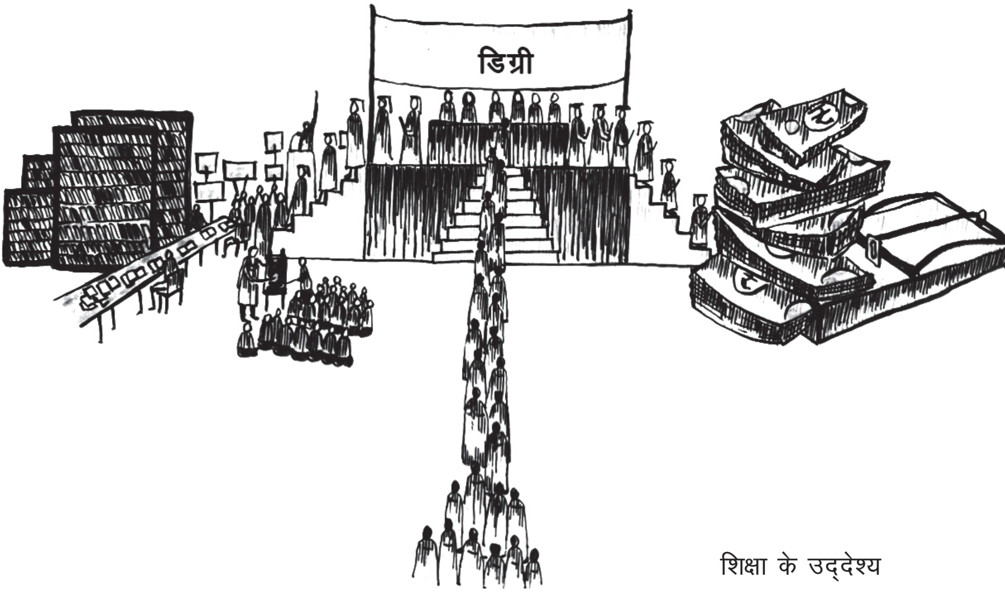
यहाँ भी रुकना शुरू किया। अब फिर से टैक्सियाँ खचाखच भरी रहती हैं और अगर किसी को एक अनुसूचित जाति के व्यक्ति के अन्दर आने पर एतराज़ होता है, तो ड्राइवर उसी से कह देता है कि भाई, अगर तुझे ज़्यादा तकलीफ होती है तो तू ही उतर जा। जब मैंने अपने मित्र अरविन्द को यह कहानी सुनाई तो उसने हँसकर कहा, 'देखा, अब ड्राइवर के लिए वे सिर्फ सवारी रह गए थे और कुछ नहीं।' बाज़ारीकरण लोगों के स्वरूप को बदल रहा है और अब कई जगह पर उन के पुराने रिश्ते और समाज में स्थान को भुला कर लोगों को सिर्फ बाज़ार के रिश्तों से देखा जाता है।



बाज़ार का स्वरूप भी बदल रहा है, गाँव और कस्बों के हाट, अनौपचारिक बाज़ारों से अब संगठित और नियमित बाज़ारों में, जो विस्तृत रूप से माल की जानकारी देते हैं और इस बात की गारन्टी देते हैं कि आपको जिस चीज़ का वायदा किया गया है वही दी जा रही है। अनियमित बाज़ार में आपको बहुत एहतियात बरतनी पड़ती थी कि आप क्या ले रहे हो और किससे। दोनों खरीददार और व्यापारी की कोशिश होती थी कि किसी तरह से दूसरे का फायदा उठा लिया जाए। माल की जानकारी ठीक से उपलब्ध नहीं होती थी। लोग यह पसन्द करते थे कि जाने-पहचाने व्यापारी से ही माल खरीदा जाए और दोस्तों व रिश्तेदारों के माध्यम से माल की गुणवत्ता को बनाए रखा जाए। इसकी तुलना में आजकल आप पाएँगे कि बाज़ारों को नियंत्रित किया जाता है। इंटरनेट पर बेचने वाली बड़ी वेबसाइटें सामान की पूरी जानकारी देती हैं और अगर कुछ ऊँच-नीच होती है तो उसे फौरन वापस ले लेती हैं। व्यापार और उत्पादों का मानकीकरण हो रहा है और उसके चलते हमारे काम करने के तरीकों और रिश्तों में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आ रहा है।

शिक्षा और बाज़ारीकरण

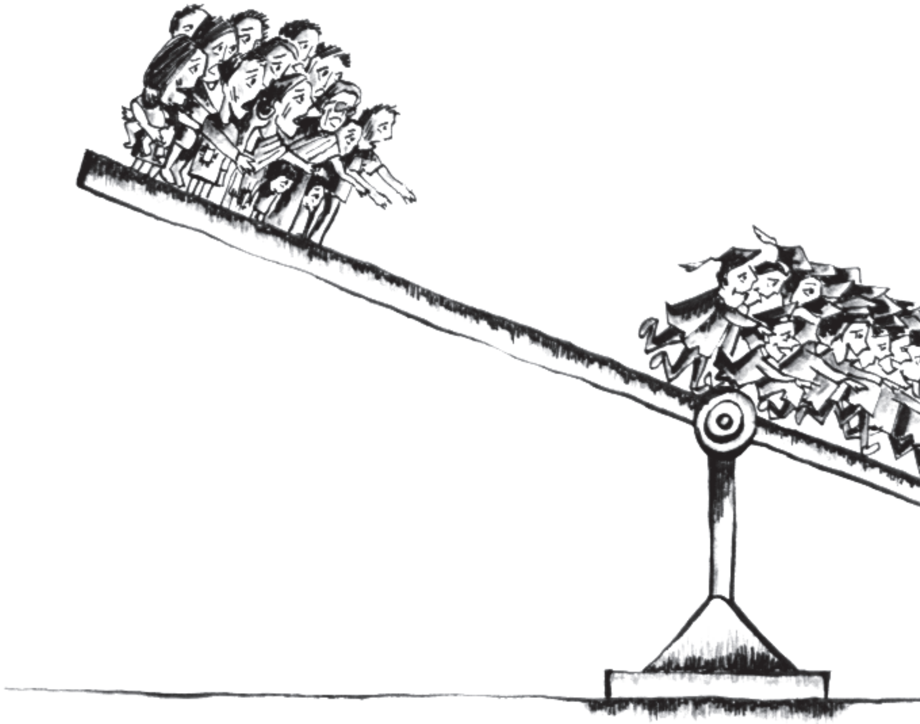
इन सब चीज़ों का शिक्षा प्रणाली पर बड़ा गहरा असर हुआ है। एक-आध शताब्दी पहले तक स्कूल और कॉलेज की शिक्षा की ज़्यादातर सांस्कृतिक भूमिका थी और उन थोड़े से लोगों को छोड़कर जिनके परिवार ज़मीदारों और राजाओं के लिए मुनीमगिरी करते थे या फिर पुजारी या मौलवी इत्यादी बनते थे, उसका मज़दूरी के बाज़ार से बहुत ज़्यादा सम्बन्ध नहीं था। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया है कि धीरे-धीरे ऐसे लोगों की संख्या बढ़ी है जो आजीविका कमाने के लिए अपना श्रम या कौशल बाज़ार में बेचते हैं। शिक्षा उनके लिए एक महत्वपूर्ण साधन है। आज के समय में शिक्षा से उम्मीद रखी जाती है कि वह लोगों को मज़दूरी के बाज़ार के ज़रिए कोई पद दिलाएगा। यह समाज का घुलाव है जो शिक्षा की भूमिका में बुनियादी परिवर्तन ला रहा है। आज से 50-75 साल पहले बहुत-से लोगों के लिए शिक्षा का



शिक्षा के उद्‌देश्य

मुख्य काम था उच्च संस्कृति सिखाना। उन्हें साहित्य, धार्मिक ग्रन्थ और खगोल-ज्योतिष जैसे विषय पढ़ाए जाते थे, और यह उम्मीद होती थी कि इससे उनकी सोच और व्यवहार में नफासत आएगी। आज शिक्षा के उस नज़रिए को नौकरी दिलाने की चुनौती के साथ जूझना पड़ रहा है। अब एक ऐसी शिक्षा चाहिए जो धन, ओहदा और शक्ति भी दिलवाए। शिक्षा के इस बदलते हुए अर्थ के पीछे समाज का बदलता हुआ ढाँचा है।

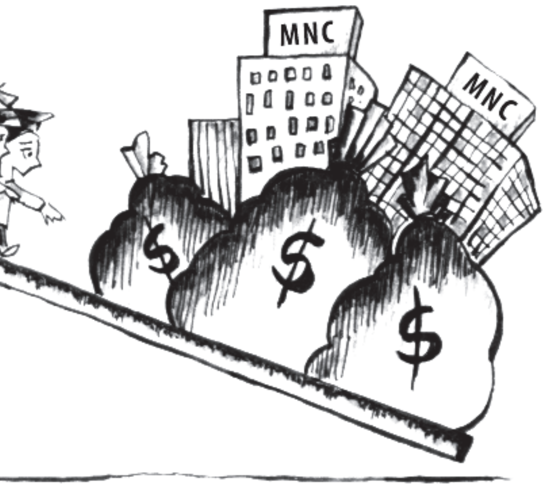
समाज के बाज़ारीकरण से जो परिवर्तन आ रहे हैं उनका असर बहुत दूरगामी है और उसके नतीजे मिले-जुले हैं। बाज़ारीकरण और जिंसीकरण से हमारा तात्पर्य है माल और सेवाओं का एक ऐसे रूप में परिवर्तित होना जिनका बाज़ारों और पैसों के ज़रिए आदान-प्रदान किया जा सके। बहुत सारे आदान-प्रदान यह रूप नहीं लेते हैं। उदाहरण के लिए, जिस तरह से एक परिवार अपने सदस्यों के लिए भोजन उपलब्ध कराता है और उसके सदस्य एक-दूसरे को प्रेम और दुलार देते हैं। अगर इन रिश्तों को पैसों में तोलना शुरू कर दिया जाए



शिक्षा पर बाज़ार का प्रभाव

तो लोग बहुत नाराज़ होंगे। जिंसीकरण का अर्थ है कि समाज में कई ऐसी चीज़ें बाज़ार में उतरती हैं जो पहले बाज़ार में नहीं थीं। कभी यह लोगों को ज़्यादा आज़ादी देता है और कभी उन्हें ऐसी स्थिति में डाल देता है कि वे बाज़ार की प्रक्रियाओं के मोहताज हो जाते हैं और अगर कोई समस्या हो तो वे किसी तरह के सांस्कृतिक सहारे से वंचित हो जाते हैं। इन सब परिवर्तनों का शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मसलन, इस पर कि स्कूलों में क्या पढ़ाया जाना चाहिए, स्कूलों को किसकी मदद करनी चाहिए और आखिर शिक्षा का उद्‌देश्य क्या है।

बाज़ारों की एक खासियत यह होती है कि वे उन लोगों को ज़्यादा ताकत देते हैं जिनके पास पैसा अधिक होता है। एक मायने में लोग बाज़ार में बराबर हैं, मगर दूसरे मायने में लोगों में इस बात से अन्तर



आ जाता है कि कौन बाज़ार को ज़्यादा प्रभावित कर सकता है। जिंसीकरण और बाज़ारीकरण के चलते जो शैक्षणिक सवाल उठते हैं उनमें से एक यह है कि ज़्यादा पैसे वालों का शिक्षा पर किस तरह का अधिकार है। उदाहरण के लिए, शिक्षा के सामने यह सवाल उठता है कि वह उन लोगों की ज़रूरतों को पूरा करेगी जिनके पास ज़्यादा धन है या उनकी जिनके पास कम है। इन दोनों की शैक्षणिक ज़रूरतें काफी अलग हो सकती हैं। हो सकता है कि जिस तरह का ज्ञान अमीर लोग चाहते हैं उसका गरीबों के लिए कोई खास उपयोग न हो। हो सकता है कि बड़ी कम्पनियाँ सिर्फ इंजीनियरिंग कॉलेजों के कम्प्यूटर सांइस के छात्रों में रुचि रखती हों। लेकिन सम्भव है कि इस तरह की पढ़ाई गरीब तबकों के लिए उतनी उपयोगी नहीं हो जितनी



सिविल इंजीनियरिंग जिसमें यह सिखाया जाए कि सड़क और पानी की व्यवस्था ज़्यादा अच्छी कैसे बनाई जा सकती है। या हो सकता है कि उनका हित ऐसी इलेक्ट्रॉनिक और मकैनिकल इंजीनियरिंग में हो जिससे छोटे कारखानों और वर्कशॉप में होने वाले उत्पादन में मदद मिले। सबसे ज़्यादा वेतन वाली नौकरियाँ अगर इस तरह के कामों के लिए नहीं हैं तो बाज़ारीकृत व्यवस्था में इनसे सम्बन्धित पढ़ाई कम लोग ही करेंगे।

शिक्षा से जुड़े मसलों में बाज़ारों के दखल से तमाम और समस्याएँ भी आ सकती हैं। मिसाल के लिए, गरीब तबकों का हित इसमें नहीं हो सकता कि वह सारी बातें जो अमीर लोग उन्हें पढ़ाना चाहते हैं उनको वे बिना सवाल उठाए या बिना विरोध किए आँख बन्द करके मान लें। हम भारतीयों के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि हम अन्याय और दुराचार के खिलाफ आवाज़ उठाना सीखें और न्याय के लिए

दबाव बनाना सीखें। यह सब ऐसी बातें हैं जिनको कई प्रभावशाली लोग नापसन्द करेंगे। शिक्षा के बाज़ारीकरण से हमारे सामने इस तरह के कई सवाल खड़े हो जाते हैं।

जिंसीकरण के साथ एक और परिवर्तन यह हो रहा है कि शिक्षक एवं बच्चों और उनके माता-पिता के बीच के सम्बन्ध ऐसे बनते जा रहे हैं जैसे एक सेल्समैन और उसके ग्राहकों के बीच होते हैं। स्कूल या कॉलेज एक व्यापारिक संस्था बनती जा रही है और शिक्षक उसमें सेवा प्रदान करने वाले व्यक्ति, ठीक उसी तरह जिस तरह किसी इंश्योरेंस



गरीबी के कारणों की पड़ताल

कम्पनी के एजेंट होते हैं। इससे शिक्षक और छात्र के बीच का रिश्ता एक बिलकुल ही अलग रूप ले लेता है। शिक्षक सिर्फ एक ऐसी सेवा दे रहा है जो मैनेजमेंट द्वारा निर्धारित की गई है। ऐसे परिवेश में शिक्षक छात्रों के लिए दुनिया को समझने या उसे एक रचनात्मक ढंग से देखने में मदद करने वाला चिन्तनशील व्यक्ति नहीं रह जाता। यह वह रिश्ता नहीं रहता जहाँ शिक्षक एक बुद्धिजीवी होता है जो बच्चों के साथ पारस्परिकता के आधार पर ज्ञान का आदान-प्रदान कर रहा हो। न ही स्कूल ऐसी जगह रह जाती है जहाँ एक व्यापक अर्थ में अमीर से गरीब के हाथों में धन का पुनर्वितरण होता हो।

इस तरह, बाज़ार कई समस्याओं व टकरावों का समाधान भी देते हैं और कई नए टकराव पैदा भी करते हैं। शिक्षा में बाज़ार के विस्तार से कई सवाल उठते हैं जिन पर बारीकी से अध्ययन करने की ज़रूरत है।

आगे पढ़िए

- ग्रेनोवेटर, मार्क एस और स्वेडबर्ग, रिचार्ड (सम्पा.), *द सोशियोलॉजी ऑफ इकॉनमिक लाइफ*, बोल्डर, वेस्टव्यू प्रेस, 1992
- पोलान्यी, कार्ल, *द ग्रेट ट्रांसफॉरमेशन*, बॉस्टन, बीकन प्रेस, 2001
- विल्क, रिचार्ड आर, *इकॉनमिक्स एंड कल्चर्सः फाउंडेशन्स ऑफ इकॉनमिक एन्थ्रोपॉलजी*, बोल्डर, वेस्टव्यु प्रेस, 1996